अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क

सन

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

औरों का हाल मालूम नहीं, लेकिन अपनी तो यह हालत रही कि खेलने-खाने के दिन, पानीपत की लड़ाइयों के सन याद करने, और जवानी-दीवानी नेपोलियन के युद्धों की तिथियाँ रटने में कटी। इसका दुख सारी उम्र रहेगा कि जो रातें सिखों की लड़ाइयों के सन याद करने में बीतीं, वो उनके चुटकलों की भेंट हो जातीं तो जीवन सँवर जाता। महमूद ग़ज़नवी बहुत पराक्रमी सही, लेकिन एक ज़माने में हमें उससे भी यह शिकायत रही कि सत्तरह हमलों के बजाय अगर वह जी कड़ा करके एक ही भरपूर हमला कर देता तो आने वाली नस्लों की बहुत सी मुश्किलें हल हो जातीं। बल्कि यूँ कहना चाहिए कि वे पैदा ही न होतीं (हमारा संकेत मुश्किलों की तरफ़ है)।

आदम की औलादों के सिर पर जो गुज़री और गुज़र रही है, उसकी ज़िम्मेदारी विश्व-विख्यात व्यक्तियों पर है। यह निरा मिथ्यारोप नहीं बल्कि इतिहास-दर्शन है, जिससे इस समय हमें कोई सरोकार नहीं। हम तो इतना जानते हैं कि मानव-जाति को इतिहास ने उतना नुक़सान नहीं पहुँचाया जितना इतिहासकारों ने। उन्होंने उसकी सादा और संक्षिप्त सी दास्तान को यादगार तिथियों का ऐसा कैलेंडर बना दिया जिसके सारे अंक सुर्ख़ नज़र आते हैं। इसलिए छात्र उचित कारणों से उनके पक्ष में खुदा से मग़फ़िरत (क्षमा) की दुआ नहीं कर सकते, और अब दिमाग़ भी इन काल-निर्धारणों का इस हद तक आदी हो चुका है कि हम मानव-अस्तित्व की कल्पना सन व संवत के बंधन के बिना कर ही नहीं सकते।

जो सन न होते तो हम न होते, जो हम न होते तो ग़म न होता

मालूम ऐसा होता है कि इतिहासकार सन को एक तिलिस्मी तोता समझते हैं जिसमें समय के अत्याचारी दानव का प्राण क़ैद है। कुछ इसी प्रकार की अवधारणा पर मेलबॉर्न के ख़िज़र[1]-सूरत आर्च बिशप मानिक्स ने तीन साल पहले व्यंग्य किया था कि जब उनके 93वें जन्मदिन पर एक अख़बार के रिपोर्टर ने अपनी नोटबुक निकालते हुए बड़े गंभीर स्वर में पूछा:

---

[1] ख़िज़र/खिज़्र-सूरत: हज़रत खिज़्र की सूरत के एक बुज़ुर्ग; इनकी लम्बी सफ़ेद दाढ़ी और चमकता हुआ चेहरा है; देखने में बुद्धिमान; ये एक नबी हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि ये अमृत पीकर अमर हो गए हैं और दुनिया में भूले भटकों को रास्ता बताते हैं।(अनु.)

आपके निकट 93 वर्ष की उम्र तक पहुँचने का असल कारण क्या है?

"बरख़ुरदार! इसका असल कारण यह है कि मैं सन 1867 ई. में पैदा हुआ था!"

और कुछ इतिहासकारों तक ही बात सीमित नहीं है। मार्च 1938 ई. में मैट्रिक की परीक्षा से कुछ दिन पहले मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बेग ने इस राज़ को फ़ाश किया (हालाँकि इसे छात्र तो खोला नहीं करते) कि संगदिल परीक्षक भी सन ही से क़ाबू में आते हैं। चुनांचे बुद्धिमान विद्यार्थी उत्तर का आरम्भ ही किसी न किसी सन से करते हैं। चाहे प्रश्न से उसका दूर का सम्बन्ध भी न हो। निजी अनुभव के आधार पर निवेदन करता हूँ कि ऐसे-ऐसे मंदबुद्धि लड़के जो नादिरशाह दुर्रानी और अहमदशाह अब्दाली में कभी अंतर न कर सके, और आज तक चंगेज़ ख़ाँ को मुसलमान समझते हैं, सिर्फ़ इस वजह से फ़र्स्ट क्लास आये कि उन्हें नरसंहार की सही तिथि और पानीपत के स्मृति-भंजक युद्धों के सन ज़बानी याद थे। ख़ुद मिर्ज़ा, जो मैट्रिक में बस इस वजह से अव्वल आ गए कि उन्हें मराठों की तमाम लड़ाइयों की तिथियाँ याद थीं, परसों तक अहिल्या बाई को शिवाजी की रानी समझे बैठे थे। मैंने टोका तो चमककर बोले:

"यानी कमाल करते हैं आप भी! अगर शिवाजी ने शादी नहीं की तो नाना फड़नवीस किसका लड़का था?"

विकसित देशों में मार्च का महीना बेहद वसंतमय होता है। यह वह ऋतु है जिसमें हरियाली ओस खा-खाकर हरी होती है और एक तरफ़ जंगल का दामन मोतियों से भर जाता है तो दूसरी तरफ़

मौजा-ए-गुल से चिरागाँ है गुज़रगाह-ए-ख़याल[1]

इस मनभावन भूमिका से मेरा मतलब यह नहीं कि इसके विपरीत पिछड़े देशों में इस मस्त महीने में पतझड़ होता है और

बजाए-गुल चमनों में कमर-कमर है खाद[2]

ध्यान सिर्फ़ इस मामले की ओर आकृष्ट कराना चाहता हूँ कि उपमहाद्वीप में यह पुष्प-ऋतु आबादी के सबसे मासूम और बेगुनाह वर्ग के लिए हर साल एक नई मानसिक वेदना का सन्देश लाती है, जिससे चार साल से लेकर चौबीस साल की उम्र तक के सभी पीड़ित नज़र आते हैं। हमारे यहाँ यह वार्षिक परीक्षाओं का मौसम होता है। ख़ुदा जाने कि शिक्षा विभाग ने इस ऋतु में इम्तिहान रखने में ऐसा कौन सा संयोग देखा, वर्ना इस नाचीज़ की राय में इस मानसिक यातना के लिए जनवरी और जून के महीने बहुत मुनासिब रहेंगे। यह इसलिए निवेदन कर रहा हूँ कि क्लासिकी ट्रेजडी के लिए ख़राब मौसम अति आवश्यक माना गया है।

---

[1] मौजा-ए-गुल से चिरागाँ है गुज़रगाह-ए-ख़याल // है तसव्वुर में ज़बस जल्वानुमा मौज-ए-शराब (मिर्ज़ा ग़ालिब)
ख़याल की गलियों में फूलों की मौजों से चिरागाँ है// कल्पना में शराब की मौजें बहुत ज़्यादा छटा बिखेर रही हैं। (अनु.)

[2] ख़राब हैं वो इमारात क्या कहूँ तुझ पास/ कि जिनके देखे से जाती रही थी भूख और प्यास/ और अब जो देखो तो दिल होवे ज़िन्दगी से उदास/ ब-जा-ए-गुल चमनों में कमर-कमर है घास/कहीं सुतून (सतम्भ) पड़ा है कहीं पड़े मरगूल (तोरण-द्वार) / यह बाग़ खा गई किसकी नज़र नहीं मालूम (शहर-ए-आशोब -मिर्ज़ा मोहम्मद रफ़ी 'सौदा')

बात से बात निकल आई, वर्ना कहना यह चाहता था कि अब जो पीछे मुड़कर देखता हूँ तो थोड़ा दुख होता है कि अपने प्रिय जीवन के पंद्रह-सोलह वसंत और जवानी की बगिया के मेवे इसी वार्षिक यातना की भेंट हो गए। यादों का भला हो! वह सलोना मौसम जिसको पिछले ज़माने की भाषा में '*जवानी की रातें मुरादों के दिन*', कहते हैं, शाहजहाँ के चार बेटों की लड़ाइयाँ और फ़्रांस के तले ऊपर अट्ठारह लूइयों के जन्म व मृत्यु के सन याद करने में बसर हुआ और अकेले फ़्रांस की क्या बात है, ब्रतानिया के इतिहास में भी छह अदद जॉर्ज और आठ-आठ एडवर्ड और हेनरी हुए हैं, जिनके जन्म और तख़्तनशीनी की तिथियाँ याद करते-करते ज़बान पर काँटे और स्मृति में नील पड़ गए थे। इनमें हेनरी अष्टम सबसे कठिन और कठोर निकला। इसलिए कि उसकी अपनी तख़्तनशीनी के अलावा उन महिलाओं की मृत्यु-तिथियाँ भी याद करनी पड़ीं जिनके साथ भोग-विलास को वह अपने लिए उचित समझता था, और जिन्हें बारी-बारी फाँसी के तख़्ते पर लटकने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अनुमान कहता है कि ऐतिहासिक नाम रखने और मृत्यु-तिथि निहित क़तए (पद्य)[1] कहने की परम्परा इसी मुश्किल को हल करने के उद्देश्य से फैली होगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इनकी मदद से स्मृति-पटल को ऐसी तिथियाँ याद रखने में आसानी होती है, जिनका भूल जाना ही बेहतर होता। कुछ शायर हज़रात एहतियातन हर साल अपनी मृत्यु-तिथि का क़तआ (पद्य) लिखकर रख लेते हैं ताकि मरने का ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद रहे और आवश्यकता पड़ने पर उत्तराधिकारियों के काम आए। कौन नहीं जानता कि मिर्ज़ा 'ग़ालिब' जो मरने की आरज़ू में मरते थे[II], कई बार अपनी मृत्यु-तिथि के क़तए कहकर शागिर्दों और क़र्ज़दाताओं को ख़ामख़ाह निराश किया होगा। लेकिन जब प्रकृति ने उनको मरने का एक सुनहरा अवसर प्रदान किया तो वे यह कहकर साफ़ टाल गए कि महामारी में मरना हमारी शान के ख़िलाफ़ है।

मार्च 1942 ई. का ज़िक्र है। बी.ए. की परीक्षा में भी अभी एक हफ़्ता बाक़ी था। रोहिलों की लड़ाइयों से फ़ुर्सत पाकर मिर्ज़ा अब्दुलवदूद बेग के पास पहुँचा तो देखा कि वे झूम-झूमकर कुछ रट रहे हैं। पूछा "ख़य्याम पढ़ रहे हो?"

कहने लगे "नहीं तो! हिस्ट्री है।"

"मगर लक्षण तो हिस्टीरिया के हैं!"

अपनी-अपनी जगह दोनों सच्चे थे। उन्होंने ग़लत नहीं कहा, हालाँकि मेरा ख़याल भी सही निकला कि वे शेर से शग़ल फ़रमा रहे थे। अलबत्ता शेर पढ़ते वक़्त चेहरे पर मिर्गी जैसी हालत मैंने क़व्वालों के सिवा किसी और के चेहरे पर इससे पहले नहीं देखी थी। फिर खुद ही कहने लगे कि "चलो हिस्ट्री की तरफ़ से तो अब चिंता नहीं रही। क़िबला (माननीय) नाना जान ने पचास मशहूर व्यक्तियों के जन्म-व-मरण तिथियों के क़तए कहकर

---

[1] उर्दू वर्णमाला में हर अक्षर के लिए कोई अंक निर्धारित है। उर्दू में ऐसी कविता की परंपरा रही है जिसमें पद्य में प्रयुक्त अक्षरों के अंकों के योग से किसी का जन्म या मृत्यु वर्ष प्राप्त होता है। (अनु.)

[II] मरता हूँ आरज़ू में मरने की // मौत आती है पर नहीं आती (मिर्ज़ा 'ग़ालिब')

मेरे हवाले कर दिए हैं, जिनमें से आधे याद कर चुका हूँ।" इसके बाद उन्होंने तैमूर लंग के जन्म और रंजीत सिंह की मृत्यु के क़तए नमूने के तौर पर गाकर सुनाए।

घर पहुँचकर हिसाब लगाया तो इस नतीजे पर पहुँचा कि प्रति व्यक्ति दो क़तओं के हिसाब से इस शाहनामा-ए-हिन्द के चार सौ मिसरे (पंक्तियाँ) हुए और इसमें वो पूरक क़तए शामिल नहीं जिनका सम्बन्ध अन्य घटनाओं और विषयों (मसलन 'जाना पृथ्वीराज का स्वयंवर में भेस बदलकर और ले भागना संयोगिता को घोड़े पर'। 'आना नादिरशाह का हिंदुस्तान में वास्ते लेने कोहेनूर हीरा बराबर अंडे मुर्ग़ाबी के'। 'प्रवेश करना वाजिद अली शाह का पहले-पहल मटियाबुर्ज में, छह रानियों समेत और याद करना बाक़ी रानियों को') या ऐतिहासिक छुटभैयों (सहायक हीरो) मसलन राणा सांगा, हेमू बक्क़ाल, निज़ाम सिक्का इत्यादि से था। एक क़तए में तो ज़िला-जुगत[1] पर उतर आए थे। यह उस अर्ध-ऐतिहासिक हादसे से सम्बंधित था, जब नूरजहाँ के हाथ से कबूतर उड़ गया और जहाँगीर ने उसको (यानी नूरजहाँ को) पहली बार "गर्म" निगाहों से देखा।

हालाँकि मानसिक तौर पर मैं पानीपत की लड़ाइयों में बुरी तरह घायल हो चुका था। लेकिन अंतिम क़तए को सुनकर मैंने उसी समय दिल में फ़ैसला कर लिया कि इम्तिहान में बाज़ज़त तरीक़े से फ़ेल होना इस ओछे हथियार से हज़ार गुना बेहतर होगा। बहरहाल मिर्ज़ा ने एक हफ़्ते बाद इस सफलता की कुंजी को परीक्षा में बेदरेग़ इस्तेमाल किया, जिसमें उन्हें दो दुश्वारियों का सामना करना पड़ा। बड़ी दुश्वारी तो यह कि कॉपी में क़तए और उर्दू वर्णमाला के अक्षरों का हिसाब देखकर परीक्षा-कक्ष का पर्यवेक्षक, जो एक मद्रासी क्रिश्चियन था, बार-बार उनके पास लपककर आता और समझाता कि उर्दू का परचा कल है। मिर्ज़ा झुंझलाकर जवाब देते यह हमें भी मालूम है, तो वह नरमी से पूछता कि फिर ये तावीज़ क्यों लिख रहे हो। आख़िरकार मिर्ज़ा ने वहीं खड़े-खड़े उसको इतिहास-लेखन की कला और सनों को निकालने के सूक्ष्म विन्दुओं व भेदों से ग़लत अंग्रेज़ी में अवगत कराया। हैरत से उसका मुँह उर्दू के अंक सात (۷) की तरह फटा का फटा रह गया। अक्षरों और अंकों को बहकी-बहकी दृष्टि से देखकर कहने लगाः

"आश्चर्य है कि तुम लोग अतीत की घटनाओं का पता ज्योतिष-विज्ञान से लगा लेते हो!"

इस साकार दुश्वारी के अलावा दूसरी दिक़्क़त यह हुई कि अभी पाँचों प्रश्नों के समस्त सम्राटों, राजाओं और संबद्ध युद्धों के अंक और सन ठीक से निकले भी न थे कि समय समाप्त हो गया और पर्यवेक्षक ने कॉपी छीन ली। बड़ी मिन्नत-समाजत के बाद मिर्ज़ा को कॉपी पर अपना रोल नम्बर लिखने की अनुमति मिली।

जैसा कि निवेदन कर चुका हूँ, मुझे सन याद नहीं रहता और मिर्ज़ा को वह घटना नहीं याद रहती जो उस सन से सम्बंधित हो। मान लीजिए, मुझे कुछ-कुछ याद पड़ता है कि फ़्रांसीसी क्रांतिकारियों ने किसी शताब्दी के अंत में बास्तील क़िले को घेरा हुआ था। लेकिन सन याद नहीं आता। अब मिर्ज़ा को ज़रूर इतना याद होगा कि सन 1779 ई. में कुछ गड़बड़ ज़रूर हुई थी। लेकिन कहाँ हुई और क्यों हुई------यह वे बग़ैर

[1] ज़िलाजुगतः पहेलीदार बातचीत बल्कि नोक-झोंक जिसमें शब्दों का खेल होता है। (अनु.)

इस्तिख़ारा[1] किये नहीं बता सकते। चुनांचे मार्च 1942 ई. ही का ज़िक्र है। हम दोनों एक-दूसरे की कमज़ोरी पर अफ़सोस कर रहे थे और लुक़मा देते जाते थे। वह इस तरह कि वे मुझे रूस की विधवा महारानी कैथरीन महान के जन्म का सन और ताजपोशी की तिथि इत्यादि बता रहे थे और मैं उनको उसके मुँहबोले पतियों के नाम रटवा रहा था। अचानक मिर्ज़ा बोले कि यार! ये बड़े आदमी मरके भी चैन से बैठने नहीं देते।

मरने वाले मरते हैं लेकिन फ़ना होते नहीं

मैंने कहा "कारलायल का कथन है कि इतिहास विख्यात व्यक्तियों की जीवनी है।"

कहने लगे "सच तो कहता है बेचारा! इतिहास बड़े आदमियों के पापों का कच्चा-चिट्ठा है जो ग़लती से हमारे हाथ थमा दिया गया। अब यह न पूछो कि किसने क्या किया, कैसे किया और क्यों किया। बस यह देखो कि कब किया।"

निवेदन किया "देखो तुम फिर सन और संवत के फेर में पड़ गए। एक चिन्तक कहता है-------"

बात काटकर बोले "भई, तुम अपने अच्छे-भले विचारों के टाँके बड़े आदमियों से क्यों जोड़ देते हो? लोग ध्यान से नहीं सुनते।"

दोबारा निवेदन किया "वाक़ई एक चिन्तक कहता है कि महान क्रांतियों की कोई तिथि नहीं होती। तुम देखोगे कि महान परिवर्तन हमेशा दबे पाँव आते हैं। ऐतिहासिक कैलेंडर में उनका कहीं उल्लेख नहीं। सब जानते हैं कि सिकंदर ने किस सन में कौन सा मुल्क जीता। लेकिन यह कोई नहीं बता सकता कि वनमानुष कौन से सन में इंसान बना। इतना तो स्कूल के बच्चे भी बता देंगे कि सीफ़ो कब पैदा हुई और सुकरात ने कब विष का प्याला अपने होंठों से लगाया लेकिन आज तक कोई इतिहासकार यह नहीं बता सका कि लड़कपन किस दिन विदा हुआ। लड़की किस गर्भित क्षण में औरत बनी। जवानी किस रात ढली। अधेड़पन कब समाप्त हुआ और बुढ़ापा किस घड़ी शुरू हुआ।"

कहने लगे " ब्रादर! इन सवालों का सम्बन्ध यूनान से नहीं यूनानी चिकित्सा से है।"

ईस्वी सन से कहीं अधिक कठिन उन तिथियों का याद रखना है जिनके बाद में "ईसा पूर्व" आता है। इसलिए कि यहाँ इतिहासकार समय के पहिये को पीछे की ओर दौड़ाते हैं। इनको समझने और समझाने के लिए मानसिक शीर्षासन करना पड़ता है जो उतना ही कठिन है जितना उलटे पहाड़े सुनाना। इसको विद्यार्थियों का सौभाग्य कहिए कि इतिहास ईसा मसीह के जन्म से पूर्व निस्बतन संक्षिप्त और अधूरा है। हालाँकि इतिहासकार प्रयासरत हैं कि आधुनिक शोध से बेज़बान बच्चों की कठिनाइयों में वृद्धि करदें। भोले-भाले बच्चों को जब यह बताया जाता है कि रोम की स्थापना 753 ईसा पूर्व में हुई तो वे नन्हे-मुन्ने हाथ उठाकर

---

[1] इस्तिख़ारा करना: काम करने या न करने के बारे में क़ुरान या अन्य तरीक़ों से राय लेना; मसलन रात की नमाज़ के बाद दुआ-ए-इस्तिख़ारा पढ़कर इस उम्मीद में सो जाना कि सपने में रहनुमाई होगी; ख़ास दुआ पढ़कर क़ुरान खोलना और अल्लाह का हुक्म पता लगाना; दीवान-ए-हाफ़िज़ से राय निकलना। (अनु.)

यह सवाल करते हैं कि उस समय के लोगों को कैसे पता चल गया है कि हज़रत ईसा मसीह के पैदा होने में अभी 753 साल बाक़ी हैं। उनकी समझ में यह भी नहीं आता कि 753 ई.पू. को सातवीं शताब्दी मानें या आठवीं। बुद्धिमान शिक्षक इन गँवारू सवालों का जवाब आम तौर पर ख़ामोशी से देते हैं। आगे चलकर जब यही बच्चे पढ़ते हैं कि सिकंदर 356 ई.पू. में पैदा हुआ और 323 ई.पू. में मरा तो इसे वे लिखाई की ग़लती समझते हुए शिक्षक से पूछते हैं कि यह राजा पैदा होने से पहले किस तरह मरा? शिक्षक जवाब देता है कि प्यारे बच्चो! पिछले ज़माने में अत्याचारी राजा इसी तरह मरा करते थे।

क्लासिकी कवि और ललित निबंधकार कुछ सोचकर चुप हो जाने की नाज़ुक कला का मर्मज्ञ है। ख़ास तौर पर उन स्थानों पर जहाँ बात करने के मज़े को मौन की मस्ती पर क़ुर्बान कर देना चाहिए। वह इस "*जावेदाँ, पैहम दवाँ, हरदम जवाँ*[1]" ज़िंदगी को वक़्त के पैमानों से नहीं नापता और सन व साल की उलझनों में नहीं पड़ता। इसलिए वह यह स्पष्टीकरण नहीं करता कि जब मिस्र को अंटोनी ने और अंटोनी को क्लियोपैट्रा ने फ़तह किया तो इस गर्मी व सीज़र झेली भूतपूर्व प्रेमिका की क्या उम्र थी। शेक्सपियर सिर्फ़ यह कहकर आगे बढ़ जाता है कि समय उसके अक्षय सौन्दर्य के सामने ठहर जाता है, और उम्र उसका रूप और रस नहीं चुरा सकती। इसके विपरीत इतिहासकारों ने दफ़्तर-के दफ़्तर इस व्यर्थ के शोध में स्याह कर डाले हैं कि अपने संदली हाथों की नीली-नीली रगों पर इतराने वाली इस स्त्री की उस समय क्या उम्र होगी। अब इनसे कोई यह पूछने वाला नहीं कि जब ख़ुद अंटोनी, साम्राज्य के कार्यभार और उसके जन्मवर्ष के बारे में, जानबूझकर अनजान बना रहा तो आप क्यों अपने को इस ग़म में ख़ामख़ाह हलकान किये जा रहे हैं? इसी तरह जब हमारा ललित-निबंधकार उस कामुक झुटपुटे की ओर संकेत करना चाहता है जब धूप ढल जाती है मगर धरती भीतर ही भीतर मीठी-मीठी आँच में तपती रहती है, तो अपनी पसंद के समर्थन में बस इतना कहकर आँखों ही आँखों में मुस्कुरा देता है कि चढ़ती दोपहर से ढलती छाँव अधिक सुखद होती है।"

इस लिहाज़ से उन महिलाओं की क्लासिकी व्यवहार-शैली प्रशंसनीय व अनुकरणीय है, जो अपनी जन्मतिथि और महीना हमेशा याद रखती हैं, लेकिन सन भूल जाती हैं।

और यह तथ्य है कि याददाश्त ख़राब हो तो आदमी अधिक समय तक जवान रहता है। कारण इसका यह है कि समय का अहसास अपने आपमें एक रोग है, जिसको दूसरे शब्दों में बुढ़ापा कहते हैं। डॉक्टर जॉनसन ने ग़लत नहीं कहा कि "यूँ तो मुझे दो बीमारियाँ हैं ------दमा और जलन्धर (जलोदर)। लेकिन तीसरी बीमारी लाइलाज है और वह है प्राकृतिक उम्र!"

---

[1] अल्लामा 'इक़बाल' के निम्नलिखित शेरों की ओर संकेतः

बरतर अज़ अंदेशा-ए-सूद-व ज़ेयाँ है ज़िन्दगी // है कभी जाँ और कभी तस्लीम-ए-जाँ है ज़िन्दगी

तू इसे पैमाना-ए-इमरोज़-व- फ़र्दा से नाप // जावेदाँ, पैहम दवाँ, हरदम जवाँ है ज़िंदगी

जीवन लाभ-हानि की चिंता से ऊपर है। कभी जीवन भरपूर तौर पर जीना है, कभी पूर्ण समर्पण जीवन है।

तू इसे 'आज' और 'कल' के पैमानों से न नाप। जीवन नित्य है, सतत गतिमान है, हर क्षण जवान है (अनु.)

लेकिन ध्यान दीजिये तो आयु भी अंतरात्मा और जूते की मानिंद है, जिनकी मौजूदगी का अहसास उस समय तक नहीं होता जब तक वे तकलीफ़ न देने लगें।

मैं यह साबित करने की कोशिश नहीं कर रहा कि जन्म का सन याद रखने का रिवाज, नीले गगन की एक गर्दिश से, उठ जाए तो बाल सफ़ेद होने बंद हो जाएँगे। या अगर कैलेंडर आविष्कार न हुआ होता तो किसी के दाँत न गिरते। फिर भी इसमें शक नहीं कि जिस व्यक्ति ने भी अविभाज्य रवाँ-दवाँ समय को पहली बार सेकेण्ड, साल और सदी में बाँटा, उसने मनुष्य को सही अर्थों में बुढ़ापे और मृत्यु का स्वाद चखाया। समय को मनुष्य जितनी बार विभाजित करेगा, जीवन की गति उतनी ही तीव्र और परिणाम स्वरूप मृत्यु उतनी ही निकट होती जायेगी। अब जबकि जीवन अपने आपको कॉफ़ी के चमचों और घड़ी की टिक-टिक से नापता है, सभ्य मनुष्य उस लौटकर न आने वाले अर्ध-उज्जवल दौर की ओर पीछे मुड़-मुड़कर देखता है, जब वह समय का शुमार दिल की धड़कनों से करता था और नई दुल्हन रात ढलने का अनुमान कानों के मोतियों के ठंडे होने और सितारों के झिलमिलाने से लगाती थीः

न घड़ी है वाँ न घंटा न शुमारे-वक़्तो साअत
मगर ऐ चमकने वालो! हो तुम्ही उन्हें सुझाते
कि गई है रात कितनी

(चिराग़ तले)